https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

4. ENVIRONMENTAL PERSPECTIVES IN FOLK AND TRIBAL ARTS: A CULTURAL AND AESTHETIC STUDY (लोक एवं जनजातीय कलाओं में पर्यावरणीय दृष्टि: एक सांस्कृतिक एवं सौंदर्यात्मक अध्ययन)

Shreya Dwivedi[a]*

[a] Assistant Professor, Dev Bhoomi Uttarakhand University

[a] *Email: shreyaji2316@gmail.com*

Abstract

Indian folk and tribal art is part of a rich cultural heritage that expresses the reciprocal relationship between humans and nature in a remarkably simple, sensitive, and symbolic way. The most striking feature of these art forms is that nature is not merely a visual backdrop, but is presented as a living, active, and revered entity. Whether it's the trees in Gond art, the agricultural cycles in Warli paintings, the rivers and lotus flowers in Madhubani art, or the fluid forms of animals and birds in Bhil paintings, nature emerges everywhere as the fundamental basis of community life. The environmental sensitivity inherent in these art forms helps us understand not only how, but also why local communities consider nature so important.

This research paper studies the structure, use of natural resources, symbolism, color language, and community experiences of various folk and tribal art traditions. In particular, it highlights how these art forms can serve as a source of inspiration for addressing modern environmental concerns such as sustainable development, biodiversity conservation, and the balanced use of natural resources. The use of natural dyes, organic materials, and sustainable techniques by these communities demonstrates that aesthetics and environmental conservation are not contradictory but mutually reinforcing.

In contemporary times, commercialization, modernization, and technological intervention have presented these art traditions with both new challenges and opportunities. Nevertheless, the environmental perspective embedded in these art forms remains highly relevant today because it inspires humanity to adopt a sensitive, responsible, and balanced approach to nature.

भारतीय लोक एवं जनजातीय कला उस सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है, जो मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक संबंधों को अत्यंत सहज, संवेदनशील और प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। इन कला-रूपों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रकृति केवल दृश्य-पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत, सक्रिय और आदर योग्य सत्ता के रूप में प्रस्तुत होती है। चाहे गोंड कला के पेड़ हों, वारली के कृषि-चक्र, मधुबनी की नदियाँ और कमल हों, या भील चित्रकला में पशु-पक्षियों के तरल रूप हर जगह प्रकृति समुदाय के जीवन का मूल आधार बनकर उभरती है। इन कलाओं में निहित पर्यावरणीय संवेदना हमें यह समझने में सहायता करती है कि स्थानीय समाज प्रकृति को किस प्रकार ही नहीं, बल्कि क्यों भी महत्वपूर्ण मानता है।

इस शोध-पत्र में विभिन्न लोक एवं जनजातीय कला-परंपराओं की संरचना, उनके प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, प्रतीक-विधान, रंग-भाषा तथा सामुदायिक अनुभवों का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से यह स्पष्ट किया गया है कि ये कला-रूप आधुनिक पर्यावरणीय चिंताओं जैसे- सतत विकास, जैव विविधता संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग के लिए कैसे प्रेरणास्रोत बन सकते हैं। इन समुदायों द्वारा प्राकृतिक रंगों, जैविक सामग्रियों एवं सतत तकनीकों का प्रयोग यह दर्शाता है कि सौंदर्यशास्त्र और पर्यावरण-संरक्षण एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं।

समकालीन समय में बाज़ारीकरण, आधुनिकता और तकनीकी हस्तक्षेप ने इन कला-परंपराओं को नई चुनौतियों और अवसरों, दोनों से परिचित कराया है। फिर भी इन कलाओं में निहित पर्यावरणीय दृष्टि आज भी अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि यह मनुष्य को प्रकृति के प्रति संवेदनशील, जिम्मेदार और संतुलित जीवन दृष्टि अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

Keywords: Folk art, tribal art, environmental perspective, aesthetics, ecology, sustainable development
लोक कला, जनजातीय कला, पर्यावरणीय दृष्टि, सौंदर्यशास्त्र, पारिस्थितिकी, सतत विकास

---

* Corresponding author.

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

प्रस्तावना

भारतीय कला परंपरा अत्यंत विशाल, विविधतापूर्ण और बहुरंगी है, जिसमें लोक एवं जनजातीय कला विशेष स्थान रखती हैं। इन कला-रूपों की सबसे विशिष्ट विशेषता यह है कि वे जीवन के किसी कृत्रिम या बाहरी सौंदर्य से नहीं बल्कि समुदाय, प्रकृति और अनुभव के मूल संबंधों से उत्पन्न होती हैं। लोक कला सामान्य जनजीवन से जुड़ी होती है, जबकि जनजातीय कला आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक स्मृतियों, विश्वासों और पर्यावरण के साथ उनके संबंधों को व्यक्त करती है।

इन दोनों प्रकार की कला में जो समान तत्व दिखाई देता है, वह है प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान। चाहे वह गोंड चित्रकला में वृक्ष की लहराती शाखाएँ हों, मधुबनी में मछलियाँ और कमल हों, वारली में कृषि और वर्षा चक्र हों या भील कला में वन-पशु सभी कला-रूप प्रकृति के साथ जीवंत संवाद प्रस्तुत करते हैं।

आज जब आधुनिकता, औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण पर्यावरण संकट दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, तब लोक एवं जनजातीय कला समाज को एक संतुलित, पर्यावरण-उन्मुख जीवन पद्धति की याद दिलाती हैं। यही इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य है, लोक एवं जनजातीय कलाओं में निहित पर्यावरणीय दृष्टि का अध्ययन और उसका समकालीन महत्व।

लोक एवं जनजातीय कला की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारतीय लोक और जनजातीय कला किसी एक कलाकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समुदायों की सामूहिक स्मृति, पीढ़ियों से संचित अनुभव और प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्पर्क का परिणाम है। इन कला-परंपराओं में जीवन, संस्कृति और प्रकृति के बीच सहज संतुलन दिखाई देता है। भारत के विविध भौगोलिक क्षेत्रों में विकसित कला-रूप—जैसे मध्य भारत की गोंड कला, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश की भील कला, महाराष्ट्र की वारली कला, बिहार की मधुबनी परंपरा, तथा झारखंड-बंगाल में प्रचलित संथाल कला—अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं के साथ-साथ प्रकृति-आधारित जीवन-दृष्टि को भी अत्यंत गहराई से दर्शाती हैं।

गोंड कला में "जीवंतता" का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसके अनुसार प्रकृति का प्रत्येक तत्व—पेड़, नदी, पशु-पक्षी—एक सजीव सत्ता मानी जाती है। भील चित्रण में बिंदुओं और जीवंत रंगों के माध्यम से ऋतुचक्र, पशु-पक्षियों और प्राकृतिक चक्रों के प्रति सघन संवेदनशीलता प्रकट होती है। वारली चित्रकला ग्रामीण जीवन, वर्षा, कृषि और श्रम की सामूहिकता को एक विशिष्ट रेखात्मक शैली में रूपायित करती है। वहीं मधुबनी और संथाल कला जल, सूर्य, पशु-पक्षियों और पृथ्वी तत्वों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए मनुष्य और प्रकृति के निरंतर संवाद को अभिव्यक्ति देती हैं।

इन तमाम कला-रूपों का साझा आधार यह है कि वे प्रकृति को किसी सजावटी पृष्ठभूमि की तरह नहीं, बल्कि एक जीवित, सक्रिय और नैतिक रूप से महत्वपूर्ण सत्ता के रूप में देखते हैं।

लोक एवं जनजातीय कला में पर्यावरणीय दृष्टि

लोक और जनजातीय समुदाय प्रकृति को दो प्रमुख स्तरों पर समझते हैं—

(1) प्रकृति एक जीवित सत्ता,

(2) प्रकृति एक नैतिक संरक्षक।

प्रथम स्तर पर इन समुदायों में यह मान्यता है कि प्रकृति का प्रत्येक तत्व—चाहे वह पशु हो, पेड़-पौधा, पर्वत, जल या नदी—एक प्रकार की चेतना और जीवन शक्ति से सम्पन्न है। गोंड कला में प्रचलित "बंधन-शक्ति" सिद्धांत इसका प्रमुख उदाहरण है, जिसमें सम्पूर्ण प्रकृति को परस्पर जुड़ी हुई जीवित शक्तियों का तंत्र माना जाता है।

दूसरे स्तर पर, प्रकृति को एक नैतिक संरक्षक के रूप में देखा जाता है। जनजातीय जीवन में यह विचार गहराई से निहित है कि मनुष्य का दायित्व है कि वह पर्यावरणीय संतुलन को न केवल समझे बल्कि उसका संरक्षण भी करे। इसलिए जल, वृक्ष, पशु, सूर्य, पृथ्वी आदि प्राकृतिक तत्वों का चित्रण केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि एक नैतिक संदेश भी देता है।

लोक/जनजातीय कला में प्रमुख पर्यावरणीय प्रतीक इस प्रकार हैं—

- वृक्ष – जीवन, वंश-वृद्धि और संरक्षण के प्रतीक
- जल – पवित्रता, निरंतरता और जीवन-स्रोत
- सूर्य – ऊर्जा, समय चक्र और सृजन
- पशु-पक्षी – पारिस्थितिक संतुलन
- पृथ्वी – मातृत्व और सृजन शक्ति का प्रतीक

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

इसी दृष्टि के कारण लोक और जनजातीय कला एक प्रकार का दृश्य पर्यावरण-शास्त्र बन जाती है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग भी स्वभावतः सतत और संतुलित रहता है—जैसे मिट्टी, पत्ते, प्राकृतिक रंग, लकड़ी और धातु का संयमित प्रयोग।

इस दृष्टि से लोक/जनजातीय कला एक दृश्य पर्यावरण शास्त्र का रूप ले लेती है।

प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग और सततता

लोक एवं जनजातीय कला का सबसे बड़ा पर्यावरणीय योगदान यह है कि इसमें पूर्णतः प्राकृतिक सामग्रियों का प्रयोग होता है:

श्रेणी	**संसाधन / तकनीक**	**विवरण / उपयोग**
प्राकृतिक रंग	गेरू	मिट्टी आधारित लाल-भूरा रंग; भित्ति-चित्र और ग्रामीण दीवार सज्जा में उपयोग
	काजल	रेखांकन, सीमांकन और आँखों/आकृतियों की गहराई देने हेतु
	हल्दी	शुभता, पवित्रता और पृष्ठभूमि रंग के रूप में
	पत्तों व फूलों से बने रंग	जैविक हल्के रंग; फ्रेस्को, वस्त्र और अलंकरण में उपयोग
	मिट्टी के विविध रंग	गोंड, वारली, सोहराई कला का मूल आधार
प्राकृतिक सतहें आधार	मिट्टी/गोबर लीपी दीवारें	वारली, भील, सोहराई जैसी दीवार-आधारित कलाओं में
	कपड़ा	मधुबनी, गोंड चित्रण; प्राकृतिक रेशों पर कार्य
	लकड़ी	मुखौटे, मूर्तियाँ और पारंपरिक शिल्प
	धातु	ढोकला शिल्प में प्राकृतिक मोम-ढलाई तकनीक के लिए
	पत्तियाँ	अल्पना, पूजा-सजावट, पारंपरिक हस्तशिल्प
सतत हस्तकला तकनीकें	ढोकला धातु शिल्प	पूरी तरह प्राकृतिक मोम-ढलाई तकनीक; पर्यावरण-अनुकूल

	बाँस व लकड़ी की नक्काशी	स्थानीय संसाधन, न्यूनतम अपशिष्ट, पर्यावरण-संगत
	प्राकृतिक तंतुओं से बुनाई	टोकरी, चटाई, घरेलू वस्तुएँ—100% जैविक और सतत

ये तकनीकें पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुँचातीं, बल्कि स्थानीय पारिस्थितिक चक्रों को बनाए रखती हैं।

वैश्वीकरण, बाज़ारीकरण और समकालीन चुनौतियाँ

आज के समय में लोक और जनजातीय कला नई परिस्थितियों का सामना कर रही है:

उनमें से यह कुछ प्रमुख है जैसे:-

(1) कृत्रिम रंगों का प्रयोग बढ़ना

प्राकृतिक रंगों की जगह सस्ते लेकिन हानिकारक केमिकल रंगों का उपयोग पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है।

(2) व्यावसायिक दबाव

कला की मौलिकता कम होती है।

परंपरागत विषय गायब होने लगते हैं।

(3) सांस्कृतिक पहचान का संकट

आधुनिकता और शहरीकरण ने कई समुदायों की कला-परंपराओं को हाशिये पर धकेल दिया है।

(4) ज्ञान का कम हस्तांतरण

युवा पीढ़ी इस कला को अपनाने में कम रुचि दिखा रही है।

इन चुनौतियों के बावजूद, लोक एवं जनजातीय कला का पुनरुत्थान भी देखा जा रहा है -सरकारी योजनाएँ, ऑनलाइन कला बाज़ार, संग्रहालय, और शोध इन कलाओं को नई पहचान दे रहे हैं।

निष्कर्ष

लोक एवं जनजातीय कलाओं में निहित पर्यावरणीय दृष्टि इस बात का संकेत देती है कि इन समुदायों ने प्रकृति को केवल संसाधन नहीं बल्कि जीवन का अभिन्न अंग माना है। उनकी कला-परंपराएँ यह दर्शाती हैं कि मनुष्य तभी संतुलित और सार्थक जीवन जी सकता है जब वह प्राकृतिक परिवेश के साथ सम्मानजनक संबंध बनाए रखे। प्राकृतिक रंगों, जैविक सामग्रियों और पारंपरिक तकनीकों का उपयोग यह सिद्ध करता है कि सततता और सौंदर्य, दोनों एक साथ चल सकते हैं।

परंतु वैश्वीकरण, बाज़ार के दबाव और सांस्कृतिक बदलावों के कारण इन कला-रूपों के सामने कई नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। फिर भी यह कला-परंपराएँ अपने भीतर ऐसी सांस्कृतिक और पारिस्थितिक चेतना संजोए हुए हैं, जो आधुनिक समाज को प्रकृति के प्रति जिम्मेदार और संवेदनशील बनने के लिए प्रेरित करती हैं।

इसलिए आवश्यक है कि इन कलाओं को संरक्षण, प्रोत्साहन और अध्ययन के माध्यम से आगे बढ़ाया जाए, ताकि इनमें निहित पर्यावरणीय संदेश वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों तक पहुँच सके। स्पष्ट है कि लोक एवं जनजातीय कला केवल सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि पर्यावरण-संतुलन की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण धरोहर है।

संदर्भ

1. देवयानी, आर. भारतीय जनजातीय कला का पर्यावरणीय दृष्टिकोण, नई दिल्ली: भारतीय कला परिषद, 2018

2. शर्मा, मोनिका. लोक कला की प्रकृति-आधारित परंपराएँ, राजस्थान कला अकादमी, 2016

3. वर्मा, सुशीला. गोंड एवं भील कला का सांस्कृतिक अध्ययन, भोपाल: जनजातीय संग्रहालय प्रकाशन, 2019

4.त्रिपाठी, एन. पी. भारतीय लोक-संस्कृति और पारिस्थितिकी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2014